इकाई 1 कृषि अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित की व्याख्या कर सकेंगे—

- भारतीय उप-महाद्वीप में कृषि के विस्तार के कारक,
- भूमि अनुदान, व्यवस्था का कालनुक्रमिक प्रतिरूप,
- भूमि अनुदान में निहित वि ..रधारा,
- विभिन्न प्रकार की कृषि बस्तियों का स्वरूप तथा भूमिका,
- भूमि अधिकारों की प्रकृति तथा विकास,
- कृषि के क्षेत्र में तकनीकी सुधार,
- भूमि से संबंधित विभिन्न वर्गों की परस्पर निर्भरता,
- व्यापार में कृषक की भूमिका, तथा
- प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था का स्वरूप।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास के प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में कृषि का विकास और भूमि संबंधों का संगठन भूमि अनुदान के माध्यम से हुआ। इस अनुदान प्रक्रिया की शुरुआत प्रथम शताब्दी ईसवी से हुई और बारहवीं सदी तक व्यवहारिक रूप से यह पूरे उप-महाद्वीप में फैल गई। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में कृषि विस्तार का मतलब अधिक और नियमित रूप से विकसित कृषि तकनीक, खेत जोतना और सिंचाई तकनीक का इस्तेमाल था। कृषि प्रक्रिया की संस्थागत व्यवस्था, उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण और उत्पादन के नए संबंधों ने इस विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विस्तार के साथ ही नए ग्रामीण तनाव पैदा हुए। कृषि व गैर-कृषि उत्पादों से संबंधित वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ गयीं। इस इकाई में इन सभी पहलुओं की चर्चा की गयी है और अन्त में प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था के स्वरूप की चर्चा की गई है। आइए, कृषि विस्तार के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करें।

1.2 कृषि विस्तार

कृषि विस्तार की शुरुआत ब्रह्मदेय और अग्रहार बस्तियों से हुई। ये ब्राह्मणों को चौथी सदी के बाद से दिए गए भूमि अनुदान थे। बाद की सदियों में यह कृषि विस्तार एकरूप व सार्वभौमिक हो गया।

आठवीं और बारहवीं सदी में इस प्रक्रिया का विस्तार हुआ। कृषि विकास की प्रक्रिया पराकाष्ठा पर जा पहुँची जो कि धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष लोगों जैसे ब्राह्मण, मंदिरों और राजा की सरकार के अधिकारियों को मिले भूमि अनुदानों के कारण संभव हो सका। हालांकि भौगोलिक और पारिस्थितिकीय कारकों की वजह से इस विकास में कई महत्वपूर्ण क्षेत्रीय विविधताएं आ गईं।

1.2.1 भौगोलिक और कालानुक्रमिक प्रतिरूप

खेती का विस्तार सिर्फ खाली जमीन पर ही नहीं हुआ बल्कि जंगलों को भी साफ करके हुआ। यह एक निरन्तर प्रक्रिया थी और यह प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था की एक मुख्य विशेषता रही है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि भूमि अनुदान पहले बाहर, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों में हुआ और बाद में धीरे-धीरे गंगा की घाटी तक फैल गया

1. इन्दुकुरुपल्ले से प्राप्त दसवीं शताब्दी का तेलुगु अभिलेख जिसमें पशुओं को मुक्त करने के बाद एक योद्धा की मृत्यु का विवरण है।

पशुओं की रक्षा करते हुए मारे गए योद्धाओं की स्मृति में उत्तरी आर्काट से प्राप्त अभिलेख।

जो कि ब्राह्मणवादी संस्कृति का केन्द्र थी। ब्राह्मण पिछड़े और आदिवासी क्षेत्रों में मौसम, खेत जोतने, सिंचाई और पशु की रक्षा के विशेष ज्ञान से कृषि प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकते थे और खेती के नए तरीके का प्रचार कर सकते थे। हालांकि यह बात पूरे भारत के लिए सच नहीं है क्योंकि भूमि अनुदान, व्यवस्थित तथा स्थानबद्ध खेती वाले क्षेत्रों और दूसरे परिस्थितिकीय क्षेत्रों में भी प्रचलित था। इन भूमि अनुदानों का उद्देश्य इन सब क्षेत्रों को नई अर्थव्यवस्था से जोड़ना था।

भूमि अनुदान व्यवस्था के कालानुक्रमिक प्रतिरूप से निम्न बातें उभरकर सामने आती हैं :

- चौथी-पाँचवीं सदी : मध्य भारत, उत्तर दक्खन और आंध्र के बड़े हिस्से में विस्तार
- पाँचवीं-सातवीं सदी : पूर्वी भारत (बंगाल और उड़ीसा), पश्चिमी भारत (गुजरात और राजस्थान में) शुरुआत
- सातवीं-आठवीं सदी : तमिलनाडु और कर्नाटक
- नवीं सदी : केरल
- बारहवीं सदी का अंत : शायद पंजाब को छोड़कर लगभग पूरे प्रायद्वीप में।

1.2.2 वैचारिक पृष्ठभूमि

जमीन के दान का विचार दान के महत्व को दर्शाता है। ब्राह्मणवादी ग्रंथों में ब्राहमणों को दान या उपहार देना पुण्य कमाने का और पाप को नष्ट करने का सबसे सही तरीका बताया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों को जीविका उपलब्ध कराने के लिए यह एक पहले से सोची-समझी कोशिश है। गुप्त काल के बाद की सदियों की सभी स्मृतियों और पुराणों में ब्राह्मणों को खेती की जमीन अनुदान देने और ताँबे के स्मृति पत्रों पर जमीन दान दर्ज करने की बात की गई है।

दान में दी जाने वाली कई प्रकार की वस्तुएं होती थीं—

- खाद्यान्न, अनाज, धान इत्यादि,
- चल सम्पत्ति जैसे सोना, मुद्रा इत्यादि, और
- अचल संपत्ति जैसे खेती की जमीन, बाग और रहने योग्य जमीन।

दान की वस्तुओं के अंतर्गत हल, गायें, बैल भी आते थे। ब्राह्मणों को दिए जाने वाले दानों में जमीन का दान सबसे उत्तम माना जाता था। दान के दुरुपयोग की स्थिति में अभिशाप का भागी बनने के भय या ब्राह्मणों को दी गई दान की जमीन को वापस लेने की प्रथा ने दान की प्रक्रिया को बनाए रखा। इस प्रकार भूमि अनुदान धर्मशास्त्र में प्रतिपादित एक निश्चित कानूनी तरीके के अनुसार दिया जाता था।

प्रारंभ में भूमि अनुदान मुख्यत: वैदिक पुजारियों (श्रोत्रिय अग्नि पुजारी) को दिया जाता था। लेकिन पांचवीं से तरहवीं सदी के बीच मंदिर के पुजारियों को भी भूमि अनुदान दिया जाने लगा। आठवीं सदी के बाद कृषि विस्तार और संगठन में मंदिर एक संस्थान के रूप में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करने लगा। दक्षिण भारतीय संदर्भ में मंदिर को दिए गए अनुदान चाहे वह भूमि भागों, पूरे गाँव के रूप में हो, देवदान के नाम से जाने जाते हैं। यह बात जोर देने लायक है कि जो प्रक्रिया एक फुहार के रूप में शुरू हुई थी वह बाद में एक शक्तिशाली धारा बन गई। भू-सम्पत्ति प्राप्त करना सिर्फ ब्राह्मणवादी मंदिरों तक ही सीमित नहीं था। गैर ब्राह्मणवादी धार्मिक संस्थान, जैसे बौद्ध या जैन विहार (समोहा और बसाढ़ी) भी विशेषकर कर्नाटक, आंध्र, गुजरात और पूर्वी भारत (बिहार और उड़ीसा) में जमींदार बनने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे। इस बारे में आपको खण्ड तीन की 6 और 7 इकाइयों में अधिक जानकारी दी जाएगी।

बोध प्रश्न 1

1) नीचे कालम ''ए'' में समय काल दिए गए हैं। निम्नलिखित क्षेत्र (मध्य भारत, बंगाल, उड़ीसा, उत्तरी दक्खन, आंध्र, तमिलनाडु, केरल, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक) जहाँ भूमि

होने के समय काल के सामने लिखें–

"ए"	"बी"
i) 4वीं – 5वीं सदी	i) ....
ii) 5वीं – 7वीं सदी	ii) ....
iii) 7वीं – 8वीं सदी	iii) ....
iv) 9वीं सदी	iv) ....

2) ब्राह्मण को क्या दान दिया जाता था? कौन-सा दान सबसे अच्छा माना जाता था?

....

....

....

....

....

1.3 कृषि संगठन

कृषि संगठन और अर्थव्यवस्था बहुत जटिल थी। इसे अनुदान की क्षेत्रीय पद्धति के गहन अध्ययन और ब्रह्मदेय, गैर-ब्रह्मदेय और मंदिर अनुदान व्यवस्था की भूमिका व चरित्र से समझा जा सकता है। भूमि अधिकार की प्रकृति और विकास, जमीन से जुड़े विभिन्न वर्गों की परस्पर अन्तर निर्भरता तथा उत्पादन और वितरण प्रक्रिया भी इसको समझने में मदद करते हैं।

1.3.1 विभिन्न प्रकार की कृषि बस्तियों का स्वरूप तथा भूमिका

ब्रह्मदेय : ब्राह्मणों को भूमि अनुदान में मिले खेत या पूरे गाँव को ब्रह्मदेय अनुदान कहा जाता है जिससे वे भू-स्वामी या भू-नियंत्रक हो जाते हैं। इसका मतलब खाली जमीन को खेती में लाना था। मौजूद खेतों को ब्राह्मणों द्वारा प्रभावित नई अर्थव्यवस्था में लाना था। इन ब्राह्मणों ने विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों को नौकरी के जरिये और वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत जातीय समूह के जरिये नई अर्थव्यवस्था में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उदाहरण के तौर पर शूद्रों को कृषक वर्ग में लाने के लिए तत्कालीन ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में तार्किक रूप देने की कोशिश की।

ब्रह्मदेय के रूप में भूमि अनुदान के प्रचलन की शुरुआत शासक वंशों द्वारा की गई और उसके बाद छोटे राजा और सामंत आदि भी इसका अनुसरण करने लगे। ब्रह्मदेय अनुदानों ने कृषि के विस्तार में सहायता क्यों की?

- उन्हें बहुत से करों और देयों से पूरी तरह या कम से कम प्रारंभिक अवस्था में छूट मिली हुई थी (उदाहरण के लिए 12 वर्ष)
- उन्हें बहुत तरह के विशेषाधिकार (परिहार) मिलते थे।

शासक परिवार संसाधन के आधार में विस्तार से आर्थिक लाभ पाते थे। इसके अलावा ब्रह्मदेय अनुदान देने से उन्हें अपनी राजनीतिक सत्ता के लिए वैचारिक आधार मिलता था। दक्षिण भारत के संदर्भ में ऐसा देखा जाता है कि ब्रह्मदेय के रूप में जमीन या तो एक ब्राह्मण को या कई ब्राह्मण परिवारों को, जो कि कुछ से लेकर कई सौ और कभी-कभी हजार से ज्यादा होते थे, दी जाती थी। ब्रह्मदेय आवश्यक रूप से बड़े सिंचाई के साधन जैसे तालाब या झील के निकट होते थे। ऐसा अक्सर देखा जाता था कि जब ब्रह्मदेय अनुदान दिये जाते थे तो उस भूमि के निकट नए सिंचाई के साधनों का निर्माण किया जाता था। यह कार्य सूखे और अर्द्ध सूखे क्षेत्रों में या उन इलाकों में विशेषकर किया जाता था जो वर्षा पर निर्भर थे। नदी घाटी क्षेत्रों में जहां अधिक खेती होती है, वे कम उत्पादन के क्षेत्रों को साथ मिला लिया करते थे। कभी-कभी दो या अधिक बस्तियों को साथ जोड़कर एक ब्रह्मदेय या एक अग्रहार बना दिया जाता था। उन गांवों से कर वसूलने का अधिकार भूमिदान करने वाले ब्राह्मणों को दे दिया जाता था और उन्हें दान में मिली जमीन पर खेती
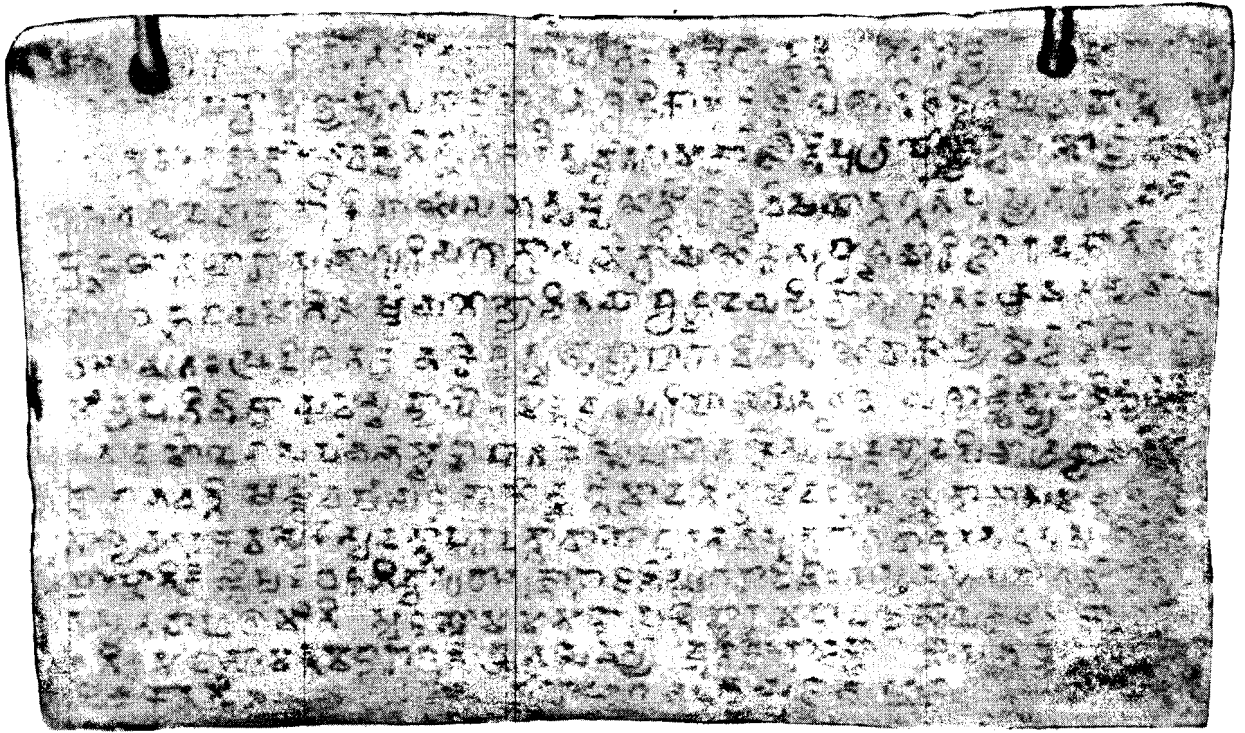
4. राजकोट से ध्रुवसेन I के काल (536 ई.) का एक भूमिदान जिसमें एक ब्राह्मण को ब्रह्मदेय दान के रूप में एक गांव दिया गया।
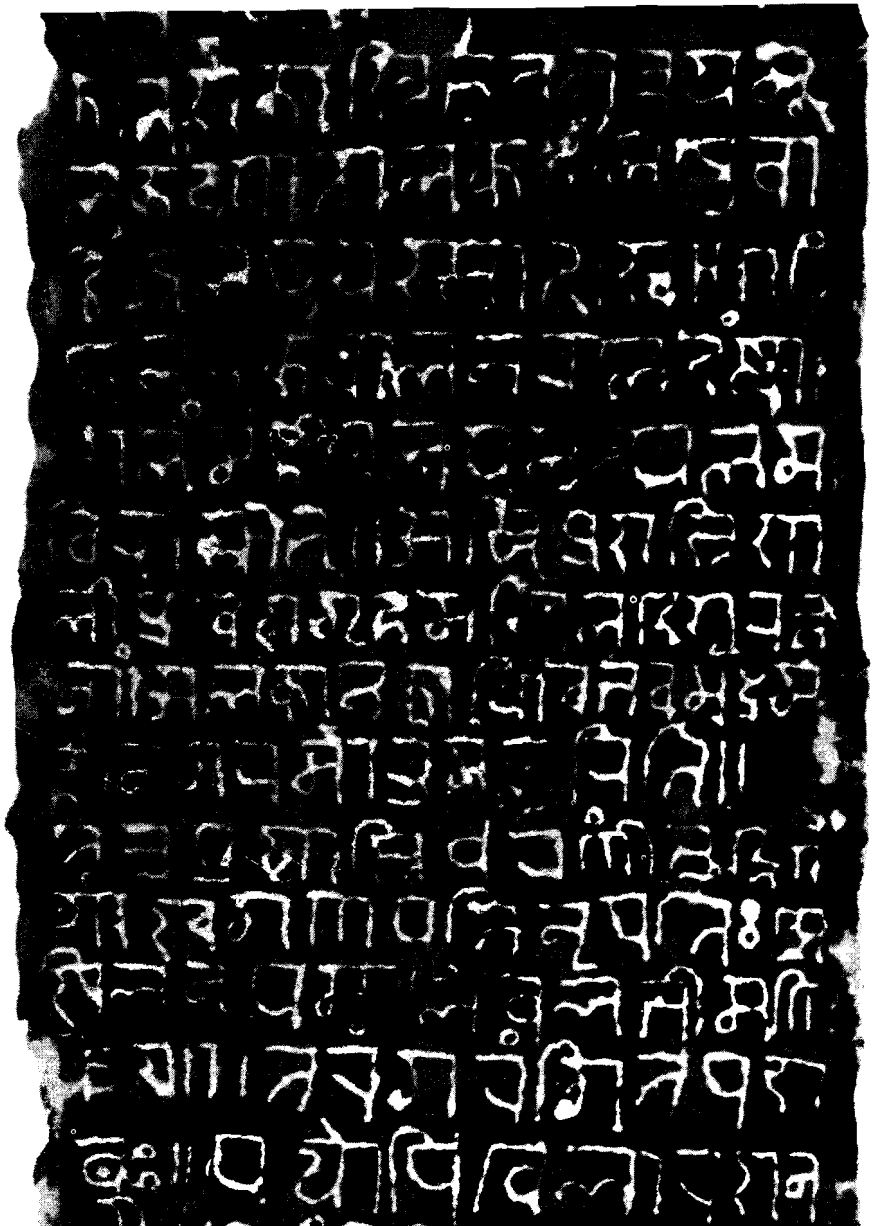
करीम नगर जिले से प्राप्त काकतिय गनपति (1177 ई.) का अभिलेख जिसमें चुनरीवेस के गवर्नर द्वारा राजा गनपति के पुरोहित मंत्री चट्टोपाध्याय को भूमिदान का उल्लेख है।

करने का अधिकार भी मिल जाता था। दान में दी गई जमीन या गांव की सीमाएं प्रायः बड़ी सावधानी से तय की जाती थी। गांव के अंदर भी सभी किस्म की जमीन जैसे—नम, सूखी और बाग आदि का विवरण भी दिया जाता था। कभी-कभी विशेष फलस और पेड़ों का उल्लेख भी होता था। जमीन दान का मतलब भूमि अधिकार के हस्तांतरण से ज्यादा होता था जैसे कई मामलों में गांव की राजस्व और आर्थिक संसाधनों के साथ-साथ मानव संसाधन जैसे—किसान, कारीगर और दूसरे लोगों को भी दान पाने वाले के नाम हस्तांतरित कर दिया जाता था। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं जिसमें गांव के लोगों की सामुदायिक जमीन या तालाब और झील पर अतिक्रमण कर लिया जाता था। इस तरह ब्राह्मण लोग इन बस्तियों में कृषि उत्पादन के प्रबन्धक हो गए और इसके लिए इन्होंने अपनी सभायें संगठित कर लीं।

गैर धार्मिक अनुदान

सातवीं सदी के उपरान्त राजकीय अधिकारियों को भी भूमि दान के रूप में वेतन दिया जाने लगा। इसका विशेष महत्व है क्योंकि इससे एक दूसरे जमींदार वर्ग का उदय हुआ जो ब्राह्मण नहीं थे।

प्रशासनिक अधिकारियों को जमीन दान देने का उल्लेख काफी प्रारंभ में 200 ई. (मनु के समय में) मिलता है। लेकिन इसका ज्यादा प्रचलन गुप्त काल के बाद हुआ। मध्य भारत, राजस्थान, गुजरात, बिहार और बंगाल के साहित्यिक ग्रंथों से पता चलता है कि मंत्री, रिश्तेदार और वैसे लोग जो रक्षा सेवाओं में संलग्न थे उन्हें दसवीं से बारहवीं सदी में कई तरह के अनुदान दिए गए। पाल भूमि चार्टर में उल्लेखित राजा, राजपुत्रा, राणका और महासामंत लोग मुख्यतः जमीन से जुड़े हुई जागीरदार थे। एक क्षेत्र के अधिकारियों को मिले अनुदान अलग-अलग होते थे। उदाहरण के तौर पर हम आधा दर्जन परमार अधिकारियों के बारे में सुनते हैं परन्तु उनमें से कुछ को ही जमीन अनुदान के रूप में मिली थी। गुजरात के चालुक्यों के अधीन ऊंचे अधिकारियों और सामंतों को बहुत बड़े भू-क्षेत्र अनुदान के रूप में दिए गए। प्राप्त प्रमाण यह बताते हैं कि असम, बंगाल और बिहार में कुल मिलाकर जो अनुदान दिए गए, उनसे अधिक अकेले उड़ीसा में दिये गये। इसके अलावा अधिकारियों को विशेषाधिकार मिले जिसके अंतर्गत वे विशेष वसूली प्राप्त कर सकते थे। इनकी अवधि तय नहीं थी परन्तु यह निश्चित रूप से ऐसे बिचौलिए पैदा करते थे जिनकी पट्टेदारों की जमीन में रुचि होती थी।

देवदान

अभिलेखों से यह विशेष प्रमाण मिलता है कि ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण धार्मिक प्रतिष्ठानों को उपहार मिलते थे। ये स्थान कृषि बस्तियों के लिए केन्द्र बिन्दु का काम करते थे और संस्कृति संक्रमण के जरिए किसान बस्तियों और जनजातीय बस्तियों को एकीकृत करते थे। मंदिर की जमीन पट्टे पर पट्टेदारों को दी जाती थी जो उपज का एक बड़ा हिस्सा मंदिर को देते थे। ऐसी जमीन अग्रहार व्यवस्था के ब्रह्मदेय या महाजनों की सभा द्वारा संचालित की जाती थी। गैर-ब्राह्मण बस्तियों में भी मंदिर मुख्य संस्थान बन गए। मंदिर की जमीनें गैर-ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई मंदिर कार्यकारिणी समिति से संचालित होती थी जैसे तमिलनाडु के विलालाज और कर्नाटक व आंध्र के ओकालू, कम्पलू आदि। जाति संघ मंदिर के इर्द-गिर्द काम करता था जिसमें विभिन्न वर्गों को जाति और कर्मकाण्डी स्तर दे दिया गया था। इस प्रक्रिया में वैसे लोग जिन्हें अशुद्ध और निम्न पेशे वाला समझा जाता था वे अछूत समझे जाने लगे। उन्हें मंदिर में नहीं आने दिया जाता था और उन्हें बस्ती के बाहर रहने को जगह दी जाती थी।

मंदिर की जमीन की देखरेख ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण भू-पति अभिजात्य वर्ग करते थे। स्थानीय इकाइयों जिसमें भूमिपति अभिजात्य वर्गों का वर्चस्व था, सिंचाई के साधनों को नियंत्रित करती थीं। इस तरह ब्राह्मण, मंदिर, गैर-ब्राह्मण, जमींदार, नौकरी प्रदान करने वाले तथा भूमि पर विशेषाधिकार रखने वाले वर्ग प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि व्यवस्था में प्रमुख स्थान रखते थे।

नए भूमिपति अभिजात्यों के अंतर्गत परिवारों के प्रधान और स्थानीय किसानों के प्रमुख, जिन्हें कानूनी अधिकार अर्थात् देखरेख करने और स्वामित्व का अधिकार था, आते थे। दूसरे शब्दों में राजा और वास्तविक उत्पादक के बीच में बिचौलियों का वर्ग उभरकर आ गया।

1.3.2 भूमि अधिकार

भूमि अनुदान का एक महत्वपूर्ण पहलू अनुदान पाने वाले को दिए गए अधिकार हैं। दिए जाने वाले अधिकारों में वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार भी हैं। करों में भूमि कर जो राजस्व का एक बड़ा हिस्सा था और जिसे राजा या सरकार को दिया जाता था, जमीन प्राप्त करने वालों को सौंप दिया गया। ऐसी परिहार या छूट जिनका संदर्भ ताम्र पत्र और शिला लेखों में मिलता है जिसमें छूट की बात दर्ज की गयी है और जो वास्तव में राजा को देय होती थी उसमें अदायगी पाने का अधिकार जमीन पाने वालों को हस्तांतरित कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह धर्मशास्त्रों के आधार पर किया गया जो भूमि पर राजा के अधिकार को स्थापित करना चाहते थे और ऐसे अनुदान को उचित ठहराते थे जिससे बिचौलियों का उदय हुआ।

हालांकि इस बात के प्रमाण मिले हैं कि प्रारंभिक बस्तियों में भूमि अधिकार का आधार सामूहिक भी होता था लेकिन निजी स्वामित्व या अधिकार का इस बात से पता चलता है कि जमीन पाने वाले को जमीन दे देने या हस्तांतरित करने का अधिकार था। उन्हें इन बस्तियों में दूसरे वंशानुगत लाभ भी मिलते थे। भूमि उपहार अक्सर जमीन खरीदने के बाद दिए जाते थे। संभवतया धार्मिक और गैर-धार्मिक दोनों प्रकार के वंशानुगत स्वामित्व का विकास ऐसे अनुदानों से हुआ।

1.4 तकनीकी सुधार

प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में सिंचाई के स्रोतों जैसे नहरों, झीलों, हौज (ततका, इरी) और कुओं (कूप और किनारु) की वृद्धि हुई। क्षेत्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि ग्रामीण बस्तियों के विस्तार में पानी के स्रोतों की सुलभता एक महत्वपूर्ण कारण रहा। पश्चिमी राजस्थान में अरघट्टा कुएं और बंगाल में स्रोता (पानी की नहर), पुष्करणी (तालाब), नदी, और दक्षिण कर्नाटक में केरेस या तालाब को भी गांव की जमीन के हस्तांतरण के समय ध्यान में रखा जाता था। स्वाभाविक तौर पर पानी के स्रोतों को प्रमुखता देने से कृषि के विस्तार में मदद मिली। विभिन्न तरह के जल निकासी संयंत्रों की जानकारी थी जो कि मानव शक्ति व पशुओं द्वारा चलाए जाते थे। शिलालेखों द्वारा पता चलता है कि आठवीं और तेहरवीं सदी के बीच ऐसे कई सिंचाई के साधनों का निर्माण और रखरखाव किया जाता था, इनमें से कई झीलें और तालाब आधुनिक युग तक रहे। ब्रिटिश प्रशासन ने इनमें से कुछ की मरम्मत और विस्तार किया। ग्यारहवीं व तेरहवीं सदी गुजरात व राजस्थान में सीढ़ी वाले कुएं (वापीज) काफी लोकप्रिय थे। वे खेतों की सिंचाई के साथ-साथ पीने के पानी की भी आपूर्ति करते थे।

सिंचाई के साधनों में वृद्धि सिंचाई तकनीक के विकास के कारण हुई। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इसके अंतर्गत बाढ़ नियंत्रण के अधिक तकनीकी और वैज्ञानिक उपाय किये गये। नदियों पर बांध बनाने के साथ-साथ नहर, तालाब और झीलों के दोनों तरफ नालिकाएं बनायी गयी (जिनमें इच्छानुसार पानी रोका या छोड़ा जा सकता था)। नदी से नालिकाएं निकाल कर मिट्टी के बांध बनाकर बाढ़ को रोका जाता था जिससे पानी के स्रोतों का संचालन हो सके।

गर्मियों में जब नदी सूख जाती थी तब झील और जलाशय का उपयोग अर्ध-शुष्क और वर्षा वाले क्षेत्रों और नदी तटों पर किया जाता था। तमिलनाडु में जलाशय का निर्माण शासक परिवारों द्वारा किया जाता था और उसकी देखरेख स्थानीय संस्थान जैसे सभा (ब्राह्मण सभा) और उर (गैर-ब्राह्मण सभा) द्वारा किया जाता था। तालाबों और झीलों का रख-रखाव स्थानीय सभाओं की विशेष समितियां करती थीं और इसके लिए कर लगाए जाते थे।

जब ब्राह्मणों को और मंदिरों को उपहार दिये जाते थे तब तालाब और कुओं को खोदने के लिए राजसी इजाजत दी जाती थी। नहर और झील के निर्माण और रख-रखाव के लिए जमीन का निर्धारण किया जाता था। तालाब खुदवाना, जमीन पाने वालों के लिए एक सुविधा और धार्मिक महत्व का काम समझा जाता था इसलिए धनी लोग भी तालाब बनवाते थे।

कृषि यंत्रों में सुधार भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। उदाहरण के तौर पर अजमेर से मिले दसवीं सदी के अभिलेख में बड़े हल का उल्लेख मिलता है। उसी तरह हानिकारक घास आदि की निराई के लिए विशेष पत्रों का उल्लेख मिलता है। वृक्षार्थवेद में पौधों की बीमारियों को दूर करने का तरीका मिलता है। अभिलेखों और साहित्यिक ग्रंथों में जल निकासी यंत्रों जैसे अरघट्टा और घाटियंत्र का उल्लेख मिलता है। अरघट्टा का उपयोग कुओं में नौवीं और दसवीं सदी में राजस्थान में किया जाता था। कश्यप की कृषिसूक्ति बताती है कि बैलों द्वारा चलाया गया घाटियंत्र सबसे अच्छा होता था और मानव शक्ति द्वारा चलने वाला सबसे खराब, जबकि हाथियों द्वारा चलाया गया मध्यम कोटि का होता था। गुरुसंहिता और कृषिनरेश्वर जैसे ग्रंथों में मौसम संबंधी जानकारी, जिसका खेती में उपयोग होता था, मिलती हे। कृषि संबंधी समसामयिक लेखों में 100 से ज्यादा अनाज जिसमें गेहूं, जई और दाल भी हैं का विवरण मिलता है। सुन्यापुराण के अनुसार बंगाल में 50 से भी ज्यादा किस्म के धान उपजाए जाते थे। उर्वरक के बारे में जानकारी काफी बढ़ी

6. नवगसि से प्राप्त नौवीं शताब्दी का कन्नड़ अभिलेख जिसमें वीर नौलिम्बा के काल में योद्धा की स्मृति में एक तालाब बनाने का विवरण है।
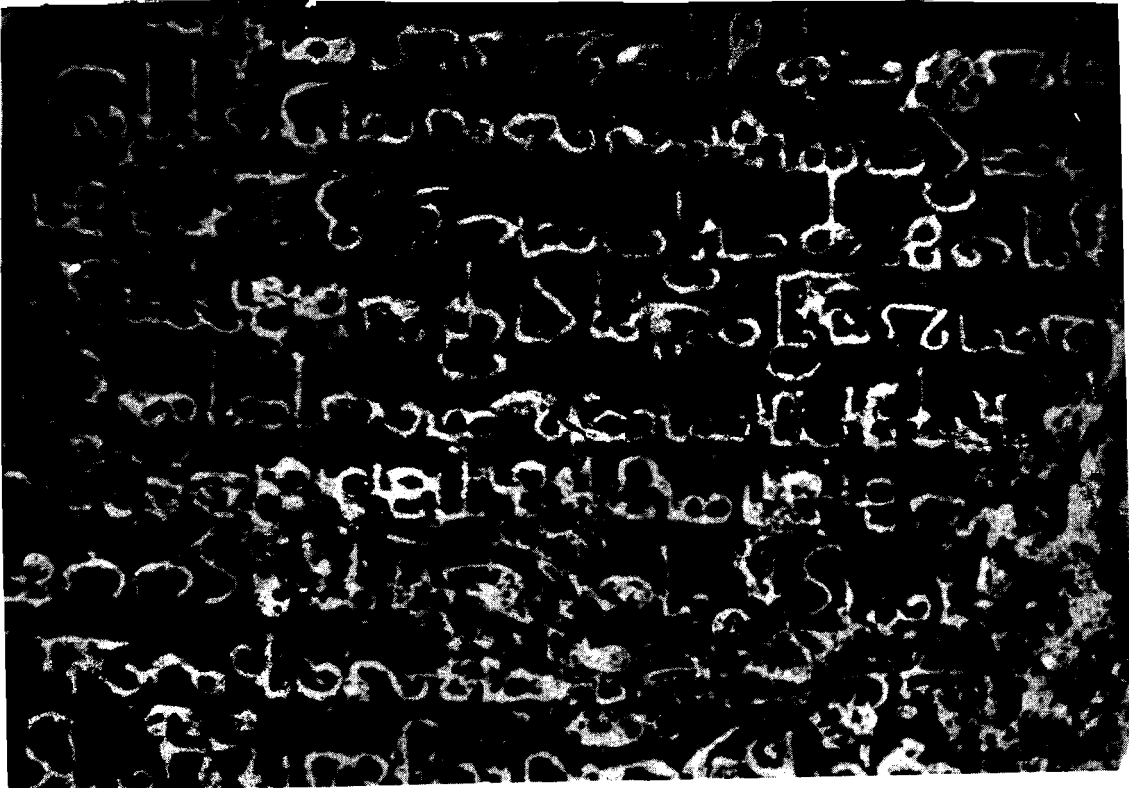
7. इरोड से प्राप्त दसवीं शताब्दी का तमिल अभिलेख जिसमें एक तालाब के निर्माण और उसकी देख-रेख के लिये वान्जी-वेस-तालि नामक व्यक्ति द्वारा खर्चा देने का विवरण है।

और खाद के प्रयोग के बारे में भी जानकारी थी। नगदी फसल जैसे सुपारी, पान, रुई, गन्ना का बार-बार उल्लेख मिलता है। राजशेखर (प्रारंभिक दसवीं सदी) हमें उत्तर बंगाल के बढ़िया गन्ने के बारे में बताता है जो रस निकालने वाले यंत्र के उपयोग के बिना भी रस देता था। इस काल में प्रायद्वीपीय भारत में नारियल और नारंगी के उत्पादन का विशेष महत्व हो गया।।

मारको पोलो मसालों के बढ़ते उत्पादन को इंगित करते हुए बताता है कि चीन के किन्से शहर में हर दिन दस हजार पौण्ड काली मिर्च की खपत होती थी जो भारत से वहां जाती थी। वह यूरोपीय बाजार में भारतीय अदरक की मांग का भी उल्लेख करता है। साल में तीन फसल उपजाने और फसल चक्र के बारे में भी जानकारी थी। इस तरह विकसित कृषि तकनीक का प्रयोग देश के सभी भागों में किया जा रहा था जिससे कृषि उत्पादन बहुत बढ़ गया था।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रह्मदेय ने कृषि विस्तार में कैसे मदद की?

....
....
....
....
....

2) ब्रह्मदेय, गैर-धार्मिक और देवदान अनुदान में क्या अंतर है?

....
....
....
....
....

3) भूमि अनुदान पाने वालों को किस तरह के अधिकार मिले थे?

....
....
....
....
....

4) सिंचाई के मुख्य तरीकों का संक्षिप्त वर्णन करें?

....
....
....
....
....

1.5 ग्रामीण तनाव

कृषि विस्तार के बावजूद ग्रामीण परिदृश्य समरूप नहीं था। किसान वर्ग श्रेणीबद्ध था। पुराने समय और पूर्व गुप्त काल के गहपति के विपरीत अब विभिन्न श्रेणी के अधिकारी जमीन से जुड़े थे जैसे—क्षेत्रिक, करसक, हलिन और अर्धिक। इन नामों में भू-स्वामित्व का कोई संकेत नहीं मिलता है जिससे लगता है कि वे विभिन्न श्रेणी के कृषकों की चर्चा कर

रहे हैं। ब्रह्मदेय का गैर-ब्रह्मदेय में परिवर्तन या गैर-ब्रह्मदेय का अग्रहारा में परिवर्तन ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव का संभावित कारण था। कश्मीर में दमार विद्रोह, बंगल में रामफल के समय में कैवरताज का विद्रोह, तमिलनाडु में जमीन अतिक्रमण की स्थिति में आत्मदाह, पन्डया क्षेत्र में शूद्रों द्वारा दान की गई जमीन पर कब्जा, बिचौलियों के प्रति अविश्वास का संकेत देते हैं। यह तथ्य कि दान देने वाले प्रायः ऐसी जमीन की तलाश करते थे जहां पर खेती विवादास्पद नहीं हो, उथल-पुथल के संकेत देते हैं।
अग्रहार-अनुदानों के आस-पास पाई गई शिलाओं से भी कृषि बस्तियों में हो रही अन्दरुनी उथल-पुथल पर हम प्रकाश डाल सकते हैं। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में ब्राह्मण हत्या का विचार क्यों इतना महत्वपूर्ण हो गया, इस सवाल का जवाब ''ब्राह्मण-किसान संबंध तथा किसान, राज्य और समाज'' जैसी विचारों की मान्यता पर शंका पैदा करता है। (देखें भाग 1.7) लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि ग्रामीण समाज के दूसरे पक्षों जैसे ब्राह्मणों के बीच, ब्राह्मण और मंदिर के बीच और धर्मनिरपेक्ष जमीदारों के बीच तनाव नहीं था।

1.6 विनिमय व्यवस्था में कृषकों की भूमिका

कभी-कभी ऐसा माना जाता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन आर्थिक संगठन में, जो कि मुख्य तौर पर कृषि पर आधारित और आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य जीविकोपार्जन था और यह बाजार के नियमों पर आधारित या जुड़ी हुई नहीं थी। इसलिए आर्थिक विकास की बहुत कम सम्भावना थी। कारीगर और दस्तकार गांवों से, अनुदान भूमि से या धार्मिक प्रतिष्ठानों से जुड़े रहते थे। व्यापारियों और बिचौलियों की विशेष भूमिका नहीं थी। वे सिर्फ गांव के लोगों को लोहे के औजार, तेल, मसाले, कपड़ा आदि की आपूर्ति करते थे। दूसरे शब्दों में बाजार व्यवस्था का बहुत सीमित कार्य था।

उपर्युक्त तस्वीर 300 से 800 ई. के लिए काफी सही है। हालांकि बाद के 500 सालों में कृषि बस्तियों में काफी तेजी से वृद्धि हुई और स्थानीय वितरण के लिए स्थानीय बाजार (देखें इकाई 2) का विकास हुआ। बाद में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नियमित वितरण के कारण संगठित वाणिज्य का उदय हुआ। इससे व्यापारी संघों के भ्रमणशील व्यापार और नौवीं सदी से आंशिक मुद्राकरण का विकास हुआ। यद्यपि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में इन विशेषताओं में सापेक्ष अंतर था (इकाई 3 और 4 भी देखें) लेकिन नई अर्थव्यवस्था में कृषि की बढ़ती भूमिका आसानी से नजर आती थी।

कृषि उत्पादों का विनिमय वैसी चीजों से होने लगा जिसको भ्रमणशील व्यापारी काफी दूर से लेकर आते थे। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के अंत में भू-स्वामित्व के प्रतिरूप में परिवर्तन आया। व्यापारी और आर्थिक रूप से धनी कारीगर जैसे बुनकर जमीन में पैसे लगाने लगे अर्थात जमीन खरीदने लगे और जमीन दान देने लगे। उदाहरण के तौर पर दक्षिण कर्नाटक में जगति-कोटाली वर्ग (बुनकरों का समुदाय) और तेलीना (तेलियों का समुदाय) खेती में सक्रिय भागीदार थे। जगति-कोटाली की चर्चा बारबार तालाब खुदवाने या बाग लगवाने में की जाती है।

1.7 प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था का स्वरूप

प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अधारित अर्थव्यवस्था के बारे में कई मत सामने आए हैं। एक तरफ इसे सामंती अर्थव्यवस्था की उपज बताया जाता है तो दूसरी ओर इसे किसान-राज्य और समाज बताया जाता है।

भारतीय सामन्तवाद की मुख्य विशेषताएं हैं :

1) पदानुक्रम पर आधारित भू-पति बिचौलियों का उदय। सामन्तों, राजकीय अधिकारियों और गैर आर्थिक आधार पर भूमि प्राप्त करने वालों को सैनिक कार्य करने पड़ते थे और उन्हें सामंती पदवी मिलती थी। अनुदान पाने वालों को अपनी भूमि पर खेती करवाने के लिए अपनी भूमि कई प्रकार के लोगों को देनी पड़ी (विभिन्न क्षेत्रों में यह प्रक्रिया भिन्न थी) जिससे विभिन्न वर्ग के बिचौलियों का उदय हुआ। इसमें कुलीन भूमिपति, पट्टेदार, जोतदार और कृषक थे। यह पदानुक्रम प्रशासनिक ढाँचे में नजर

आता था, जहाँ जमींदार-जागीरदार संबंधों का उदय हुआ। दूसरे शब्दों में भारतीय सामंतवाद में जमीन का और उसकी उपज का असमान वितरण था।

2) दूसरा महत्वपूर्ण पहलू जबरन मजदूरी का प्रचलन था। ब्राह्मण और जमीन का दान पाने वाले अन्य लोग जबरन मजदूरी (विस्ती) लेने के अधिकार का दावा करते थे। मूलतः जबरन मजदूरी राजा या राज्य का विशेषाधिकार था। इसे जमीन पाने वाले छोटे अधिकारियों, गांव-अधिकारी और दूसरों को हस्तांतरित किया गया। सिर्फ चोल अभिलेखों में जबरन मजदूरी के 100 से ज्यादा संदर्भ मिलते हैं। यहां तक कि किसान और कारीगर भी विस्ती के अंतर्गत आते थे। इसके परिणामस्वरूप कृषि दास प्रथा का उदय हुआ जिसमें खेत मजदूर अर्द्ध दास हो गए।

3) शासकों और बिचौलियों के द्वारा जमीन पर अधिकार की बढ़ती मांग के कारण किसान का भूमि पर अधिकार कम हो गया। कईयों की स्थिति पट्टेदारों की सी हो गई जिन्हें हटाए जाने का खतरा बना रहता था। कई किसान अधिक (जोतदार) हो गए। करों के बोझ, जबरन दबाव और कर्ज के कारण किसानों पर दबाव बढ़ता गया।

4) कई तरीके से अधिशेष (उत्पादन का अतिरिक्त भाग) लिया जाता था। आर्थिक मांगों के अतिरिक्त दमन एक प्रमुख तरीका था। नए संपत्ति संबंधों के उदय से नए आर्थिक दमन की शुरुआत हुई। राजराजा चोल के अभिलेख में लगभग 50 प्रकार के करों और राज्य की मांगों से बढ़ते हुए दबाव का पता चलता है।

5) यह एक अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी। भूमि अनुदान पाने वाले को जमीन के साथ मानव संसाधनों का हस्तांतरण यह दर्शाता है कि ऐसे गांव में किसान, हस्तकार और कारीगर गांव से जुड़े थे और एक दूसरे पर निर्भर थे। जमीन से उनका जुडाव अनुदान पाने वालों का उन पर नियंत्रण बनाए रखता था। संक्षेप में 500 सालों के सर्वेक्षण में अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर गांव में वर्ण व्यवस्था के अन्दर काम करने वाले किसान उस समय के कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की खास विशेषता हैं। भारतीय सामंतवाद के सिद्धांत के विरोध में स्वायत्त किसान समाज का सिद्धान्त दिया जाता है। यह सिद्धांत दक्षिण भारत में मिले प्रमाणों पर आधारित है।

इस सिद्धांत के अनुसार प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में दक्षिण भारत में स्वायत्त किसान क्षेत्र नाडू कहलाते थे। वे परिवार और परिवार समूहों के संबंधों पर संगठित थे। कृषि उत्पादन और इसका नियंत्रण नाडू के लोगों अर्थात नत्तार द्वारा संचालित होता था। नत्तार नाडू की जनता को कहा जाता था। इस संगठन के सदस्य वेल्लाल या गैर-ब्राह्मण किसान थे। उनकी स्वायत्तता का प्रमाण इस बात से मिलता है कि जब राजा या प्रधान भूमि अनुदान देते थे तो आदेश नत्तार की सलाह पर जारी किए जाते थे। आदेश पहले उन्हें दिए जाते थे। वे दान में मिली जमीन का निर्धारण और देखरेख करते थे क्योंकि वे उत्पादन के संगठक थे। ब्राह्मण और दूसरे प्रभावी किसान उत्पादन में उनका साथ देते थे। ऐसा लगता है कि इस सिद्धांत के प्रवर्तक ग्रामीण आत्मनिर्भरता पर विश्वास रखते थे जो भारतीय सामंतवाद का महत्वपूर्ण घटक है। भारतीय सामन्तवाद के सिद्धांत और स्वायत्त किसान समाज के सिद्धांत को मानने वाले उनके लिए ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था काफी जटिल थी। इसके चरित्र को समझने के लिए और एक सामान्य विश्लेषण करने के लिए इसके क्षेत्रीय प्रतिरूपों पर काम करना होगा।

बोध प्रश्न 3

1) इस इकाई के अध्ययन काल में ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव के कारण बताइए।

....

....

....

....

....

2) प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में वाणिज्य का क्या स्वरूप था? क्या इसका भूमि स्वामित्व के प्रतिरूप पर कोई असर पडा?

....

....

....

....

....

3) भारतीय सामंतवाद की पाँच विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

1.8 सारांश

इस इकाई में आठवी से तेरहवीं सदी की कृषि अर्थव्यवस्था की समीक्षा में निम्न तत्व उभर कर सामने आते हैं:

- भूमि अनुदान के कारण पूरे भारतीय उप-महाद्वीप में कृषि का वास्तविक विस्तार। जबकि विशेषकर खाली पड़ी जमीन और जंगल के क्षेत्र में विस्तार अधिक हुआ। साथ ही वैसे क्षेत्रों में भी अनुदान दिए गए जहां पहले से ही खेती होती थी। ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण दोनों की वैचारिक रुचियां भूमि अनुदान में थीं। इन दोनों ने ही भूमि अनुदानों की बहुत प्रशंसा की।
- श्रेणीगत भूमि अधिकारों के साथ विभिन्न प्रकार की कृषि बस्तियों का उदय।
- राजकीय अधिकारी, व्यापारी और कारीगर इत्यादि जो कि कृषक नहीं थे, की जमीन में बढ़ती रुचि।
- सिंचाई, कृषि के यंत्रों, फसल और फसल पद्धति में तकनीकी सुधार।
- विभिन्न वर्गों का पारस्परिक संबंध जो कि जमीन से जुड़े थे ग्रामीण तनाव को रेखांकित करता था, और
- प्रारंभिक मध्ययुगीन कृषि अर्थव्यवस्था के स्वरूप पर विद्वानों के विचार जिसमें मुख्य विशेषताएं सामने आईं, "भारतीय सामंतवाद" और "किसान राज्य और समाज"।

1.9 शब्दावली

अग्रहार : ब्राह्मणों को अनुदान में मिला गांव जिसका भूमि कर उन्हें राज्य को नहीं देना होता था।

अर्धिक : वह कृषक जो दूसरों का खेत जोतता है और आधी फसल पाता है

बसादी : जैन विहार संस्थान

ब्रह्मदेय : कर मुक्त जमीन या गांव जो ब्राह्मणों को उपहार में दी जाती थी।

दमार : कश्मीर के शक्तिशाली अधिकारीगण जिन्होंने जमीन में रुचि विकसित कर ली थी और वे ब्राह्मणों का विरोध करते थे।

देवदान : कर मुक्त जमीन जो उपहार में ब्राह्मणों के मंदिर के देवताओं के नाम दी जाती थी। जैन और बौद्धों को दी जाने वाली भूमि को पलि चंदा कहते हैं।

धर्मशास्त्र : ब्राह्मण धर्म ग्रंथ, कानून के ग्रंथ

हलिन : हल चलाने वाला

करसक : खेत जोतने वाला

महाजन : ब्राह्मणों की एक तरह की सभा।

महासामंत : महा प्रमुख, सामंत से ऊंचा अधिकारी।

परिहार : कर और अन्य देय से मुक्ति (कर मुक्त जमीन को पाने वाले का विशेष अधिकार)

किसान राज्य और समाज : ऐसी व्यवस्था जहां किसान अपने उत्पादन के साधनों का स्वयं स्वामी हो और अपने हितों को देखते हुए अपनी इच्छानुसार खेती कर सकता हो।

किसानीकरण : प्रक्रिया जिसके द्वारा उन लोगों को खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था, जो कृषि से जुड़े हुए नहीं थे।

राणक : एक प्रकार का भू-सामंत।

श्रोत्रिय : ऐसे ब्राह्मण जिन्हें वेदों का अच्छा ज्ञान था।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) मध्य भारत, उत्तरी दक्खन और आंध्र
   ii) बंगाल, उड़ीसा, गुजरात और राजस्थान
   iii) तमिलनाडु, कर्नाटक
   iv) केरल

2) आपको अपने उत्तर में अनाज, धन, खेती की ज़मीन, बाग, हल, गाएं, बैल आदि के विषय में लिखना चाहिए। भू-दान सर्वोत्तम माना जाता था। देखें उप-भाग 1.2.2

बोध प्रश्न 2

1) ब्रह्मदेय कृषि विस्तार में इसलिए मदद कर सके क्योंकि वे भू-राजस्व से मुक्त थे और उन्हें विशेषाधिकार और सुविधाएं मिली हुई थीं। इसलिए जमीन देने वालों को इन्हें विकसित करने में ज्यादा लाभ था। इसके अलावा यह जमीन खाली पड़ी थी और इसे खेती योग्य बनाने से कृषि भूमि में विस्तार होता (देखें उप-भाग 1.3.1)

2) ब्रह्मदेय अनुदान केवल ब्रह्मणों को दिए जाते थे जबकि धर्मनिरपेक्ष अनुदान राजकीय कर्मचारियों को उनके वेतन के बदले दिया जाता था। देवदान अनुदान ब्राह्मणवादी और गैर-ब्राह्मणवादी मंदिरों को दिए जाते थे (देखें उप-भाग 1.3.1.)

3) अनुदान पाने वालों को भूमि राजस्व और अन्य कर एकत्र करने का अधिकार था और वे प्रशासनिक नियंत्रण भी करते थे। (देखें उप-भाग 1.3.2)

4) आपके जवाब में कुंओं, तालाबों, झीलों और नहरों की चर्चा होनी चाहिए। आप जल निकासी के यंत्र जैसे घाटियंत्र, अरघट्टा और पशु शक्ति का इस्तेमाल भी शामिल करें। (देखें भाग 1.4)

बोध प्रश्न 3

1) तनाव का मुख्य कारण ब्रह्मदेय जमीन का गैर-ब्रह्मदेय और अग्रहार में परिवर्तन करना, दूसरों की जमीन पर अतिक्रमण और बिचौलियों का होना था (देखें भाग 1.5)

2) अंतरक्षेत्रीय और क्षेत्रीय व्यापारिक गतिविधियां शुरू की गई। कृषि उपज का सुदूर क्षेत्रों की वस्तुओं से विनिमय। व्यापारिक और प्रभावशाली कारीगरों द्वारा जमीन में निवेश ने भू-स्वामित्व का रूप बदल दिया (देखें भाग 1.6)

3) आपके उत्तर में भारतीय सामंतवाद की विशेषताएं, पदानुक्रम पर आधारित भू-संबंधी बिचौलियों का उदय, जबरन मजदूरी की मौजूदगी, किसानों के भूमि अधिकारों में कमी, अधिशेष वसूलने से आर्थिक दमन और अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का अस्तित्व आदि सम्मिलित होना चाहिए (देखें भाग 1.7)